ज्ञानके प्रत्यक्ष और परोक्ष भेदोंका आधार

एक ज्ञान प्रत्यक्ष और दूसरा परोक्ष क्यों है ? इसके समाधानमें जैनागममें जो कुछ कहा गया है उसका सार यह है—"सब जीवोंमें पदार्थोंके जाननेकी शक्ति विद्यमान है उसके द्वारा प्रत्येक जीव पदार्थबोध किया करता है। पदार्थबोध मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञानके भेदसे पाँच प्रकारका होता है। मतिज्ञानमें स्पर्शन, रसना, नासिका, नेत्र और कर्ण इन पाँच इन्द्रियोंमेंसे किसी भी इन्द्रिय अथवा मनकी सहायता अपेक्षित रहा करती है। श्रुतज्ञान सिर्फ मनकी सहायतासे हुआ करता है और अवधि, मनःपर्यय तथा केवल ये तीनों ज्ञान इन्द्रिय अथवा मनकी सहायताके बिना ही हुआ करते हैं। यथायोग्य इन्द्रिय अथवा मनकी सहायतासे उत्पन्न होनेके कारण मतिज्ञान और श्रुतज्ञानको परोक्ष कहते हैं तथा इन्द्रिय अथवा मनकी सहायताके बिना ही उत्पन्न होनेके कारण अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञानको प्रत्यक्ष कहते हैं।"

जैनागममें इससे भी आगे इतना कथन और पाया जाता है—"स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क और अनुमान ये चारों प्रकारके मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञान सर्वथा परोक्ष हैं। अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान सर्वथा प्रत्यक्ष हैं। शेष अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ये चारों प्रकारके मतिज्ञान इन्द्रिय अथवा मनकी सहायतासे उत्पन्न होनेके कारण जहाँ परोक्ष हैं वहाँ लोकसंव्यवहारमें प्रत्यक्ष माने जानेके कारण उक्त चारों ज्ञान (अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा) प्रत्यक्ष भी हैं।"

यहाँपर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा इन चारों मतिज्ञानोंको लौकिक व्यवहारमें जो प्रत्यक्ष स्वीकार किया गया है उसका कारण क्या है ? इस प्रश्नके समाधानमें मेरा मत यह है कि जैनागममें इन्द्रिय अथवा मनकी सहायतासे होनेवाले ज्ञानोंको परोक्ष और इन्द्रियादिककी सहायताके बिना ही होनेवाले ज्ञानोंको प्रत्यक्ष कहनेका आशय उन-उन ज्ञानोंकी पराधीनता और स्वाधीनता बतलाना मात्र है, इसे स्वरूपकथन नहीं समझना चाहिये। इस प्रकार प्रत्यक्ष और परोक्षके उक्त लक्षण करणानुयोगकी विशुद्ध आध्यात्मिक दृष्टिसे कहे गये हैं। लेकिन स्वरूपका कथन करनेवाला जो द्रव्यानुयोग है उसकी दृष्टिसे प्रत्यक्ष वह ज्ञान कहलाता है, जिसमें पदार्थका साक्षात्काररूप बोध हो और परोक्ष वह ज्ञान कहलाता है, जिसमें पदार्थका बोध तो हो, लेकिन वह बोध साक्षात्कार रूप न हो। पदार्थका साक्षात्काररूप बोध वहाँ होता है जहाँ पदार्थ-दर्शनके सद्भावमें पदार्थज्ञान हुआ करता है और पदार्थका असाक्षात्काररूप बोध वहाँ होता है जहाँ पदार्थदर्शनके बिना ही पदार्थका ज्ञान हो जाया करता है। इस प्रकार पदार्थदर्शनके सद्भावमें जो पदार्थबोध हुआ करता है उसे प्रत्यक्ष और पदार्थदर्शनके बिना ही जो पदार्थबोध हो जाया करता है उसे परोक्ष समझना चाहिए। प्रत्यक्ष और परोक्षके इन लक्षणोंके अनुसार पदार्थदर्शनके सद्भावमें होनेके कारण अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ये चारों मतिज्ञान तथा अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान ये सब प्रत्यक्ष हैं और शेष स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क और अनुमान ये चारों मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञान ये सब चूँकि पदार्थदर्शनके बिना ही हो जाया करते हैं, इसलिये परोक्ष हैं। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक जीवमें पदार्थोंके जाननेकी योग्यताकी तरह पदार्थोंके देखनेकी भी योग्यता विद्यमान है, इसलिए जिस प्रकार प्रत्येक जीव जाननेकी योग्यताका सद्भाव रहनेके कारण पदार्थोंको जानता है उसी प्रकार वह देखनेकी योग्यताका सद्भाव रहनेके कारण पदार्थोंको देखता भी है और चूँकि पदार्थका दर्शन पदार्थके प्रत्यक्षमें कारण होता है। अतः जो जीव पदार्थका प्रत्यक्षज्ञान करना चाहता है उसे पदार्थका दर्शन अवश्य होना चाहिए, क्योंकि बिना पदार्थदर्शनके किसी भी पदार्थका प्रत्यक्ष होना संभव नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत्यक्षशब्दका अर्थ "अक्षं = आत्मानं प्रति" इस व्युत्पत्तिके अनुसार पदार्थकी आत्मावलम्बनतापूर्वक होनेवाला पदार्थज्ञान होता है और परोक्षशब्दका अर्थ "अक्षात् = आत्मनः परम्" इस व्युत्पत्तिके अनुसार पदार्थकी आत्मावलम्बनताके बिना ही होनेवाला पदार्थज्ञान होता है तथा यहाँपर जो पदार्थकी आत्मावलम्बनताका कथन किया गया है उसका अर्थ "आत्मप्रदेशोंका हमारे ज्ञानके आधारभूत पदार्थके आकाररूप परिणत हो जाना" होता है बस, इसीको पदार्थका दर्शन या दार्शनोपयोग समझना चाहिए। यह पदार्थदर्शन कहीं-कहीं तो स्पर्शन, रसना, नासिका, नेत्र और कर्ण इन पाँच इन्द्रियोंमेंसे किसी भी इन्द्रिय द्वारा अथवा मन द्वारा यथासम्भव यथायोग्यरूपमें हुआ करता है और कहीं-कहीं इन्द्रिय अथवा मनकी सहायताके बिना ही यथायोग्यरूपमें हुआ करता है। इस तरह जैनागममें पदार्थदर्शनके चार भेद मान लिए गये हैं—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन।

नेत्र इन्द्रिय द्वारा पदार्थके नियत आकारका नियत आत्मप्रदेशोंमें पहुँच जानेको चक्षुदर्शन, नेत्र इन्द्रियको छोड़कर शेष स्पर्शन, रसना, नासिका और कर्ण इन चारों इन्द्रियोंमेंसे किसी भी इन्द्रिय द्वारा अथवा मन द्वारा अपने-अपने अनुरूप पदार्थके नियत आकारोंका नियत आत्म-प्रदेशोंमें पहुँच जानेको अचक्षुदर्शन, इन्द्रिय अथवा मनकी सहायताके बिना ही रूपवान् (पुद्गल) पदार्थके आकारका नियत आत्मप्रदेशोंमें पहुँच जानेको अवधिदर्शन, तथा इन्द्रिय अथवा मनकी सहायताके बिना ही विश्वके समस्त पदार्थोंके आकारोंका सर्व आत्मप्रदेशोंमें पहुँचनेको केवलदर्शन समझना चाहिये।

नेत्र इन्द्रियसे होनेवाले अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा मतिज्ञानोंमें चक्षुदर्शनका सद्भाव कारण होता है, स्पर्शन, रसना, नासिका और कर्ण इन्द्रियोंमेंसे किसी भी इन्द्रिय अथवा मनसे होनेवाले अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा मतिज्ञानोंमें उस-उस इन्द्रिय अथवा मनके द्वारा होनेवाले अचक्षुदर्शनका सद्भाव कारण होता है तथा अवधिज्ञानमें अवधिदर्शनका और केवलज्ञानमें केवलदर्शनका सद्भाव कारण होता है। मनःपर्ययज्ञानमें भी मानसिक अचक्षुदर्शनका सद्भाव कारण होता है।

इस प्रकार अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान तो सर्वथा प्रत्यक्ष हैं अर्थात् इन्द्रिय अथवा मनकी सहायताके बिना ही उत्पन्न होनेके कारण ये तीनों ज्ञान चूँकि स्वाधीन ज्ञान हैं अतः करणानुयोगकी विशुद्ध आध्यात्मिक दृष्टिसे प्रत्यक्ष हैं और चूँकि ये तीनों ज्ञान उक्त प्रकारके पदार्थदर्शनके सद्भावमें ही उत्पन्न होते हैं अतः स्वरूपका कथन करनेवाले द्रव्यानुयोगकी दृष्टिसे भी ये प्रत्यक्ष ही हैं। तथा स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क और अनुमान ये चारों मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञान ये सब सर्वथा परोक्ष हैं अर्थात् यथासम्भव इन्द्रिय और मनकी सहायतासे उत्पन्न होनेसे कारण चूँकि ये ज्ञान पराधीन हैं अतः करणानुयोगकी विशुद्ध आध्यात्मिक दृष्टिसे परोक्ष हैं और चूँकि ये ज्ञान उक्त प्रकारके पदार्थदर्शनके बिना ही उत्पन्न हो जाया करते हैं अतः स्वरूपका कथन करनेवाले द्रव्यानुयोगकी दृष्टिसे भी ये परोक्ष ही हैं। लेकिन अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ये चारों मतिज्ञान कथंचित् प्रत्यक्ष और कथंचित् परोक्ष माने गये हैं अर्थात् ये चारों ज्ञान चुँकि उक्त प्रकारके चक्षुंदर्शन अथवा अचक्षुदर्शन रूप पदार्थदर्शनके सद्भावमें ही उत्पन्न होते हैं, इसलिए स्वरूपका कथन करनेवाले द्रव्यानुयोगकी दृष्टिसे तो ये प्रत्यक्ष हैं और चूँकि ये इन्द्रिय अथवा मनकी सहायतासे ही उत्पन्न हुआ करते हैं अतः करणानुयोगकी विशुद्ध आध्यात्मिक दृष्टिसे ये परोक्ष भी हैं। इस कथनके साथ जैनागमके पूर्वोक्त इस कथनका भी सामञ्जस्य बैठ जाता है कि अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान सर्वथा प्रत्यक्ष हैं, स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क और अनुमान सर्वथा परोक्ष हैं तथा अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ज्ञान कथंचित् प्रत्यक्ष और कथंचित् परोक्ष हैं।

शंका—केवलज्ञान ही ऐसा ज्ञान है जो दर्शनके सद्भावमें हुआ करता है। शेष ज्ञान तो दर्शनके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सद्भावमें न होकर दर्शनपूर्वक ही हुआ करते हैं, इसका अर्थ यह है कि केवलज्ञानको छोड़कर शेष ज्ञानदर्शनके बाद ही हुआ करते हैं, आगममें भी ऐसा ही बतलाया गया है, इसलिये अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ये चारों मतिज्ञान तथा अवधि और मनःपर्ययज्ञान ये सब दर्शनके सद्भावमें होते हैं—ऐसा कहना गलत है ?

उत्तर—केवलज्ञानकी तरह उक्त अवग्रहादि ज्ञान भी दर्शनके सद्भावमें ही हुआ करते हैं। आगममें जो इनका दर्शनपूर्वक होना लिखा है उसका आशय इतना ही है कि इन ज्ञानोंके होनेमें दर्शन कारण है। जिस प्रकार "सम्यग्दर्शनपूर्वक सम्यग्ज्ञान होता है" इस आगमवाक्यमें पूर्वशब्दको कारणरूप अर्थका बोधक स्वीकार किया गया है उसी प्रकार "दर्शनपूर्वक ज्ञान होता है" इस आगमवाक्यमें भी पूर्वशब्दको कारण रूप अर्थका बोधक ही स्वीकार करना उचित है। दूसरी बात यह है कि कार्यकारणभावकी स्वीकृतिके लिए कार्योत्पत्तिके समयमें कारणकी उपस्थिति रहना आवश्यक है, इसलिए जब दर्शन और ज्ञानमें कार्यकारणभाव स्वीकार किया गया है तो दर्शनका ज्ञानोत्पत्तिके समयमें उपस्थित रहना आवश्यक हो जाता है।

शंका—जिस प्रकार किसी भी वस्तुकी किसी एक 'पूर्व पर्यायके बाद दूसरी कोई उत्तर पर्याय हुआ करती है या एक नक्षत्रके उदयके बाद दूसरे नक्षत्रका उदय हुआ करता है तो जैसा कार्यकारणभाव पूर्वपर्यायका उत्तरपर्यायके साथ या एक नक्षत्रके उदयका दूसरे नक्षत्रके उदयके साथ पाया जाता है वैसा ही कार्यकारणभाव पूर्व और उत्तर कालमें उत्पन्न होनेवाले दर्शन और ज्ञानमें भी समझ लेना चाहिए, इसलिए दर्शन और ज्ञानमें कार्यकारणभाव रहते हुए भी दर्शनका ज्ञानोपत्पत्तिके समयमें उपस्थित रहना आवश्यक नहीं है ?

उत्तर—पहली बात तो यह है कि दर्शन और ज्ञान ये दोनों एक ही गुणकी पूर्वोत्तरकालवर्ती दो पर्यायें नहीं हैं अपितु अलग-अलग दो गुणोंकी अलग-अलग पर्यायें हैं, अन्यथा इनके आवारक दर्शनावरण और ज्ञानावरण दोनों कर्मोंका आत्मामें पृथक्-पृथक् अस्तित्व मानना असंगत हो जायगा। दूसरी बात यह है कि वस्तुकी पूर्वपर्याय उत्तरपर्यायकी उत्पत्तिमें अथवा पूर्व नक्षत्रका उदय उत्तर नक्षत्रके उदयमें कारण नहीं होता है। केवल पूर्वपर्याय और उत्तरपर्यायमें उत्पत्तिकी अपेक्षा तथा पूर्व नक्षत्र और उत्तर नक्षत्रमें उदयकी अपेक्षा जो क्रमपना पाया जाता है वह क्रमपना यहाँ पर कार्यकारणभावका व्यवहार करने मात्रमें कारण होता है क्योंकि पूर्व नक्षत्रका उदय उत्तर नक्षत्रके उदयमें कारण नहीं होता है, यह बात तो स्पष्ट है ही, परन्तु वस्तुकी पूर्वपर्याय उत्तरपर्यायकी उत्पत्तिमें कारण नहीं होती है, यह बात भी उतनी ही स्पष्ट समझनी चाहिए। इसका आशय यह है कि पूर्वपर्यायके विनाशके बिना उत्तरपर्यायकी उत्पत्ति संभव नहीं है, इसलिए पूर्वपर्यायका विनाश ही उत्तर पर्यायकी उत्पत्तिमें कारण होता है, पूर्वपर्याय नहीं। यदि कहा जाय कि पूर्वपर्यायका विनाश ही तो उत्तरपर्यायकी उत्पत्ति है इसलिए पूर्वपर्यायके विनाशको उत्तरपर्यायकी उत्पत्तिमें कारण कैसे माना जा सकता है ? इसलिए पूर्वपर्यायको ही उत्तर पर्यायकी उत्पत्तिमें कारण मानना उचित है, तो इसका उत्तर यह है कि इस तरहसे पूर्वपर्यायके विनाशको ही उत्तरपर्यायकी उत्पत्ति स्वीकार कर लेनेके बाद पूर्वपर्यायको अपने विनाशका ही कारण मानना अपने आप अयुक्तिक हो जाता है क्योंकि पूर्वपर्यायका विनाश उसके अपने स्वतंत्र कारणों द्वारा होता है, पूर्वपर्याय उसमें कारण नहीं है, यही मानना उचित है और चूंकि पूर्वपर्यायका विनाश ही उत्तरपर्यायकी उत्पत्ति है। अतः जो पूर्वपर्यायके विनाशका कारण है उसीको उत्तरपर्यायकी उत्पत्तिमें कारण माना जा सकता है, पूर्व पर्यायको नहीं। इस कथनसे यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि जो लोग पूर्वपर्यायको उत्तरपर्यायकी उत्पत्तिमें उपादान कारण मानते हैं उनका यह मानना गलत है क्योंकि उत्तरपर्यायकी तरह पूर्वपर्याय भी कार्यमात्र है, उत्तर पर्यायकी वह उपादान नहीं। इन दोनोंका उपादान वह है जिसकी कि ये पर्यायें हैं। लेकिन इस तरह इन दोनोंकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्पत्ति एक साथ इसलिए नहीं होती है कि दोनों पर्यायोंकी उत्पत्तिमें अलग-अलग निमित्तसामग्री अपेक्षित रहा करती है और यह युक्ति-संगत भी है क्योंकि उत्तरपर्यायकी उत्पत्तिकी जो निमित्तसामग्री है वह तो पूर्वपर्यायके विनाशमें ही निमित्त हो सकती है, उत्पत्तिमें नहीं।

इस कथनसे यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि उपादान और निमित्त दोनों तरहके कारणोंका कार्योत्पत्तिके समयमें सद्भाव रहनेसे ही कार्य उत्पन्न हो सकता है, अन्यथा नहीं, इसलिये जिन (अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा, अवधि, मनःपर्यय और केवल) ज्ञानोंकी उत्पत्तिमें दर्शन कारण है उनकी उत्पत्तिके समयमें अपने-अपने अनुकूल दर्शनका सद्भाव रहना ही चाहिए।

शंका—दर्शन और ज्ञानमें कार्यकारणभाव वास्तविक नहीं है, बात सिर्फ इतनी है कि छद्मस्थोंके दर्शन और ज्ञानकी उत्पत्तिमें जो स्वाभाविक क्रमपना पाया जाता है उसकी अपेक्षासे इन दोनोंमें कार्यकारण-भावका व्यवहार मात्र किया जाता है ?

उत्तर—हम पहले कह आये हैं कि पदार्थके प्रत्यक्षमें पदार्थका दर्शन कारण होता है, आगममें भी दर्शनको ज्ञानमें कारण स्वीकार किया गया है। इसके विपरीत भी यदि दर्शनको ज्ञानमें कारण नहीं माना जायगा, तो फिर आत्मामें ज्ञानगुणसे पृथक् दर्शनगुणका अस्तित्व मानना व्यर्थ हो जायगा, ज्ञानगुणकी ही पूर्वपर्यायका नाम दर्शन और उत्तरपर्यायका नाम ज्ञान मान लेना पर्याप्त होगा। लेकिन जब आत्मामें ज्ञान-गुणसे पृथक् दर्शनगुणका अस्तित्व स्वीकार किया गया है और सर्वज्ञमें भी केवलज्ञानके समसमयमें केवल-दर्शनका सद्भाव भी जब कारणरूपसे स्वीकार किया गया है, तो इससे यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि दर्शन और ज्ञानमें कार्यकारणभाव वास्तविक है, उपचारसे नहीं।

शंका—"यदि छद्मस्थों (अल्पज्ञों) के दर्शन और ज्ञानका एकसाथ सद्भाव मान लिया जाता है, तो "छद्मस्थोंके एक साथ दो उपयोग नहीं होते हैं" इस आगमवाक्यकी संगति कैसे होगी ?

उत्तर—उपयोग, परिणमन, पर्याय, व्यापार या क्रिया ये सब एकार्थबोधक शब्द हैं और यह स्वतः-सिद्ध नियम है कि एक गुणके दो परिणमन एक कालमें नहीं होते हैं, बस, इसी आधारपर आगममें यह बात बतलायी गयी है कि छद्मस्थोंके एक साथ दो उपयोग नहीं होते हैं। लेकिन यदि दर्शनगुण और ज्ञानगुण दोनोंका छद्मस्थोंके एकसाथ व्यापार होना अशक्य है तो फिर उनके सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्-चारित्र अथवा मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र आदि गुणोंका भी एक साथ व्यापार मानना अयुक्त हो जायगा।

यहाँपर इतना विशेष समझ लेना चाहिए कि जिस प्रकार सर्वज्ञकी तरह छद्मस्थोंके नाना गुणोंके व्यापारोंका एक कालमें सद्भाव मानना युक्त है उसी प्रकार छद्मस्थोंकी तरह सर्वज्ञके एक गुणके दो व्यापारों का अभाव मानना भी युक्त है। इसलिये सर्वज्ञको जो सम्पूर्ण पदार्थोंका युगपत् ज्ञान होता रहता है वह भी ज्ञानगुणका एक व्यापार रूप ही होता है। अतः उक्त आगमवाक्यको नियामक न मानकर स्वरूपका प्रतिपादक मात्र समझना चाहिए।

शंका—छद्मस्थोंके इन्द्रिय अथवा मनकी सहायतासे दर्शन होता है और इन्द्रिय अथवा मनकी सहायतासे ही ज्ञान होता है, इसलिए जब इन्द्रिय अथवा मन दर्शनमें कारण होते हैं तब वे ज्ञानमें कारण नहीं हो सकते हैं और जब वे ज्ञानमें कारण होते हैं तब दर्शनमें कारण नहीं हो सकते हैं, अतः उनके दर्शन और ज्ञानका एक साथ सद्भाव मानना अयुक्त है ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर—एक ही वस्तु एक साथ भिन्न-भिन्न अनेक कार्योंमें निमित्त देखी जाती है, अतः इन्द्रिय अथवा मनका एक साथ दर्शन और ज्ञानके व्यापारमें निमित्त होना असंभव नहीं है। दूसरी बात यह है कि जब अवधिदर्शन और अवधिज्ञान दोनों ही इन्द्रिय अथवा मनकी सहायताके बिना ही उत्पन्न होते हैं तो उनके एकसाथ उत्पन्न होनेमें कौनसी बाधा रह जाती है। तीसरी बात यह है कि निमित्तोंका सद्भाव रहते हुए प्रत्येक गुणका प्रति समय कुछ न कुछ परिणमन अर्थात् व्यापार होना ही चाहिए अन्यथा उसका अस्तित्व ही समाप्त हो जायगा, इसलिए भी छद्मस्थोंके दर्शन और ज्ञानके एक साथ उत्पन्न होनेमें कोई विरोध नहीं रह जाता है और मुख्य बात तो यह है कि जब दर्शन ज्ञानकी उत्पत्तिमें कारण होता है तथा केवलदर्शन और केवलज्ञान दोनों सर्वज्ञमें एक साथ विद्यमान रहते हैं तो दर्शन और ज्ञान ये दोनों परस्पर विरोधी भी नहीं हैं।

शंका—एक तरफ तो निमित्तोंका सद्भाव रहते हुए दर्शन और ज्ञान आदि गुणोंका प्रतिसमय कुछ न कुछ व्यापार होता ही रहता है, ऐसा मान लिया गया है और दूसरी तरफ यह भी कहा गया है कि स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और श्रुतज्ञान पदार्थदर्शनके बिना ही उत्पन्न हो जाया करते हैं अर्थात् जिस कालमें ज्ञानगुणका स्मृत्यादिरूप व्यापार होता है उस कालमें दर्शनगुण व्यापारशून्य हो रहता है, तो इन दोनों परस्परविरोधी कथनोंकी संगति कैसे होगी ?

उत्तर—स्मृति आदि ज्ञान पदार्थदर्शनके बिना ही हो जाया करते हैं, यह तो ठीक है, परन्तु वहाँ दर्शन गुण व्यापारशून्य ही बना रहता है अथवा उन स्मृत्यादि ज्ञानोंमें दर्शनगुणके व्यापारका कोई उपयोग ही नहीं है, ऐसी बात नहीं समझनी चाहिए।

तात्पर्य यह है कि स्मृतिज्ञानमें धारणा ज्ञानको कारण माना गया है। परन्तु हमें धारणाज्ञान रहते हुए भी पदार्थका सर्वदा स्मरण क्यों नहीं होता रहता है ? इसका उत्तर यह है कि धारणा जिस कालमें उद्बुद्धताका रूप धारण कर लेती है उस कालमें ही स्मृति होती है, अन्यकालमें नहीं, और धारणाज्ञानकी यह उद्बुद्धता नियत आत्मप्रदेशोंका उस धारणज्ञानरूप परिणमनको छोड़कर कुछ भी नहीं है, जिसे पहले दर्शनोपयोग कह आये हैं। इस कथनसे यह सिद्ध होता हैं कि स्मृति आदि ज्ञान भी दर्शनोपयोग अर्थात् दर्शनगुणके व्यापारके अभावमें उत्पन्न नहीं हो सकते हैं अर्थात् जिस प्रकार अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ये चारों मतिज्ञान तथा अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान ये सब दर्शनगुणका व्यापार रहते हुए ही उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क और अनुमान ये चारों मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञान ये सब भी दर्शनगुणका व्यापार रहते हुए ही उत्पन्न होते हैं। लेकिन अवग्रहादि ज्ञानोंमें आत्माके दर्शनगुणका अर्थाकाररूप व्यापार कारण होनेकी वजहसे जहाँ उन्हें प्रत्यक्ष मान लिया गया है। वहाँ स्मृति आदि ज्ञानोंमें आत्माके दर्शनगुणका अर्थका अभाव रहते हुए धारणा आदि ज्ञानका रूप व्यापार कारण होनेकी वजहसे उन्हें परोक्ष माना गया है। स्मृतिको धारणाज्ञानपूर्वक, प्रत्यभिज्ञानको स्मृति और प्रत्यक्षज्ञानपूर्वक, तर्कको प्रत्यभिज्ञानपूर्वक, अनुमानको तर्कज्ञानपूर्वक और श्रुतज्ञानको शब्दश्रवण या अंगुल्यादिदर्शन तथा इनमें संकेत ग्रहणरूप मतिज्ञानपूर्वक माननेका अभिप्राय यही है कि जिस कालमें आत्माके दर्शनगुणका उस-उस ज्ञानरूप व्यापार होता है उस कालमें वे-वे ज्ञान उत्पन्न हो जाया करते हैं।

शंका—ईहाज्ञान अवग्रहज्ञानपूर्वक होता है, अवायज्ञान ईहाज्ञानपूर्वक होता है, धारणाज्ञान अवग्रह या अवायपूर्वक होता है और मनःपर्ययज्ञान मानसिक ईहाज्ञानपूर्वक हुआ करता है, इस प्रकार ज्ञानपूर्वक होनेकी वजहसे इन ज्ञानोंको भी परोक्षज्ञान मानना उचित है ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर—ईहा आदि ज्ञान अवग्रहादि ज्ञानपूर्वक होते हैं, इसका आशय इतना ही है कि ईहा आदि ज्ञान अवग्रह आदि ज्ञानोंके उत्पन्न होनेके बाद हुआ करते हैं। परन्तु जिस कालमें ईहा आदि ज्ञान उत्पन्न होते हैं उस कालमें आत्माके दर्शनगुणका अर्थाकाररूप व्यापार ही इनमें कारण होता है, अतः इन सबको प्रत्यक्ष ज्ञानोंकी कोटिमें ग्रहण किया गया है।

शंका—जब कि प्रत्येक जीवमें दर्शन और ज्ञानगुणका कुछ-न-कुछ विकास सर्वदा पाया जाता है तो क्या विग्रहगतिमें भी अल्पज्ञ जीवोंके किसी-न-किसी रूपमें पदार्थोंका दर्शन और ज्ञान स्वीकार करना चाहिए या नहीं ?

उत्तर—विग्रहगतिमें अल्पज्ञ जीवोंके इन्द्रियादि निमित्तोंका अभाव होनेके कारण दर्शन और ज्ञान दोनों गुणोंका कुछ भी व्यापार नहीं होता है, उस समय ये केवल अपने विकसित रूपमें ही अवस्थित रहते हैं।

शंका—जिस प्रकार अल्पज्ञ जीवोंके विग्रहगतिमें देखने और जानने रूप योग्यताओंका सद्भाव रहते हुए भी पदार्थोंका देखना और जानना नहीं होता है उसी प्रकार उनके (अल्पज्ञ जीवोंके) देखनेरूप व्यापारके समय जाननेरूप योग्यताका और जाननेरूप व्यपारके समय देखनेरूप योग्यताका व्यापाररहित (लब्धिरूप-से) सद्भाव माननेमें क्या अपत्ति है ?

उत्तर—विग्रहगतिमें इन्द्रियादि निमित्तोंका अभाव पाया जानेके कारण ही अल्पज्ञ जीवोंमें देखने और जाननेकी योग्यताएँ लब्धिरूपसे विद्यमान रहती हैं। लेकिन चूँकि पर्याप्त अवस्थामें इन्द्रियादि निमित्तोंका सद्भाव अल्पज्ञ जीवोंके पाया जाता है। अतः उपादान और निमित्त दोनों कारणोंके सद्भावमें दोनों योग्यताओं-के व्यापारका अर्थात् दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोगका एक ही साथ सद्भाव मानना अनिवार्य हो जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org